



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 889-890
www.allresearchjournal.com
Received: 18-11-2015
Accepted: 22-12-2015

डॉ. युगलकिशोर शर्मा
प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, से.म.
बि.रा. महाविद्यालय, नाथद्वारा
पता- 29, समर्पित कोम्प्लेक्स,
पुलां, उदयपुर, राजस्थान, भारत

नाथद्वारा चित्रकला का स्वरूप

डॉ. युगलकिशोर शर्मा

सारांश-

भोध पत्र का सारांश इस रूप में उभर कर आता है कि नाथद्वारा चित्रकला को किसी शैलीगत प्रारूप में निबद्ध नहीं कर यदि उसका वृहद रूप भारतीय कला के उस रूप में आंकलन किया जाये जिसमें भारतीय कला का मूल रूप औचित्यवाद रहा है तो नाथद्वारा चित्रकला अपने आपमें वैयक्तिक एवं विशिष्ट रूप में प्रस्थापित होती है।

मुख्य भाव: - औचित्यवाद (Eclecticism), निश्चय मात्रिक विभेदन (Model Differentiation), निश्चय मात्रिक परिपाटी (Model Convention)

प्रस्तावना:

भारतीय चित्रकला में राजस्थान की चित्रात्मक कला प्रमुखता रखती है राजस्थान की चित्रकला भारतीय चित्रकला की विशिष्टता के विशुद्ध रूप को दर्शाती है। राजस्थान की ही नाथद्वारा चित्रकला राजस्थान की विभिन्न शैलियों एवं पश्चिमी कला का प्रभाव दर्शाती है जो औचित्यवाद को स्पष्ट करती है।

भारत के राजस्थान में स्थित धार्मिक नगर नाथद्वारा में श्रीनाथजी मन्दिर में गोवर्धनधारी कृष्ण का पुष्टिमागीय स्वरूप श्रीनाथजी सेव्य रूप में प्रतिष्ठित है। पूर्व में यह मन्दिर ब्रज के गोवर्धनपर्वत पर था किन्तु औरंगजेब की हिन्दु विरोधी नीति के कारण 1671 ई. में तत्कालिन गोस्वामी दामोदरजी श्रीनाथजी को लेकर कोटा, बूंदी, किशनगढ़ व जोधपुर के बाद मेवाड़ में आये जहाँ मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने नाथद्वारा में मन्दिर बनवा कर सुरक्षा प्रदान की। श्रीनाथजी के नाम से ही यह स्थान श्रीनाथद्वारा (नाथद्वारा) कहलाया। यहाँ पर पनपी चित्रशैली को नाथद्वारा चित्रशैली कहते हैं। नाथद्वारा से पूर्व ब्रज में वल्लभाचार्यजी (1478 से 1530 ई.) के द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रह तथा सेवा प्रणाली के अन्तर्गत पुष्टि दर्शन का समन्वय किया गया। वल्लभाचार्य जी ने चित्रों को रूप दर्शन भक्ति में सम्मिलित कर चित्र सेवा को इंगित किया जिसे चित्रकला को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। वल्लभाचार्य द्वारा प्रस्तावित पुष्टि भक्ति में लीलागान व चित्रदर्शन से भक्तों को परम सुख मिला भक्तों में चित्रदर्शन रुचि पूर्ण होने के कारण नाथद्वारा में भी चित्रों की मांग बढ़ी और असंख्य चित्रों का निर्माण हुआ जो आज भी अनवरत है।

नाथद्वारा चित्रकला को यदि किसी शैलीगत प्रारूप, जैसे मेवाड़, ब्रज इत्यादि में निबद्ध नहीं कर अगर इसके वृहद रूप में आंका जाय, जिसमें भारतीय कला का मूर्तरूप 'औचित्यवाद' (Eclecticism) रहा तो नाथद्वारा चित्रकला अपने आप में वैयक्तिक रूप में प्रस्थापित होती है। 'एक्लेक्टिज्म' के परिवेश में नाथद्वारा चित्रकला अत्यन्त भाव प्रधान, हृदयग्राही और जनरुचि की शैली में उभरी ब्रज से नाथद्वारा तक विभिन्न स्थानों पर जहाँ श्रीनाथजी का ठहराव रहा वहाँ की स्थानीय चित्र शैली का प्रभाव भी आये बिना नहीं रहा। नाथद्वारा में श्रीनाथजी के प्रतिष्ठित होने के पश्चात् चित्रों की मांग बढ़ी जिससे अन्य स्थानों से कई चित्रकार यहाँ आकर बसे जिससे उनकी चित्रशैली का प्रभाव भी इस शैली पर पडा।

मेवाड़ के विभिन्न कालों के चित्रकारों की तत्कालीन चित्रशैली का सर्वाधिक प्रभाव नाथद्वारा की चित्रशैली पर आया। यहाँ के चित्रकारों ने अद्भुत कौशल से तत्कालीन शैलियों का समन्वित कर समन्वित रूप से शैली का प्रादुर्भाव हुआ है। चित्रकारों ने नवीन शैलियों के श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति से नाथद्वारा शैली लोकरुचि की हो गई। इस शैली पर बूंदी शैली का वातावरणीय प्रभाव का काव्यात्मक रूप, किशनगढ़ शैली का भव्य वरिम विन्यास का रूप, देवगढ़ से उदयपुर तक हुए झुण्ड चित्रण का रूप तथा जयपुर शैली का अलंकारिक रूप समाहित है।

नाथद्वारा के चित्रकारों ने विशाल आकार की पिछवाइयों, लघुचित्रों, पटचित्रों आदि में कृष्ण स्वरूप, तत्संबंधित आख्यानों, कथाओं और परिवेशों को उच्चतर होते हुए आशयों में रख कर पुष्टि-दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभूति कराने का पक्ष सर्वप्रथम रखा।

Corresponding Author:

डॉ. युगलकिशोर शर्मा
प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, से.म.
बि.रा. महाविद्यालय, नाथद्वारा
पता- 29, समर्पित कोम्प्लेक्स,
पुलां, उदयपुर, राजस्थान, भारत

इस अनुभूति में तत्कालीन शैलियों का यथार्थ अभिप्राय भी स्वीकारा गया। चित्रात्मक तत्वों में वास्तविक अनुभूति, जिसमें पिण्डीय अनुभूति, भव्य अनुभूति श्रेण्य अनुभूति एवं अलंकारिक आह्लाद की अनुभूति थी, प्रमुख रही। इस वास्तविक अनुभूति का शिखर तब आया जब सामाजिक यथार्थ के प्रत्यक्ष विवरण हेतु फोटोग्राफी का उपयोग होने लगा। नाथद्वारा चित्रकारों ने इस फोटोग्राफी विधा का अपनी संवेदनशीलता एवं आकारदत्तवीय अनुभवों के अनुरूप उपयोग करना शुरू किया।

18वीं शताब्दी के अन्त में ड्यूगरो फोटोग्राफी एवं अन्य विभिन्न शैलियों, जैसे— पटना, कालीघाट, आंचलिक कला आदि का समन्वित प्रभाव रहा। नाथद्वारा के चित्रकारों ने फोटोग्राफी में निहित बारीकियों का एक प्रच्छन्न स्वरूप परदाज के रूप में किया। उन्होंने परम्परा के गुण-औचित्य द्वारा चित्र-सामग्री के उपयोग को स्थापित किया। उन्होंने अत्यन्त कुशलता से पुरातन एवं पश्चिमी शैली के चित्रात्मक गुणों, मुगलकला से संबंधित तत्वों, तथा तत्कालीन भागवत-चित्रण की परम्परा से प्राप्त प्रवृत्तियों का उपयोग किया। नाथद्वारा की चित्रकला पुष्टिमार्गीय-दर्शन, उससे अनुभूतित जीवन-प्रक्रिया व विषय वस्तु से समीकरण को स्थापित करती है।

उपरोक्त संदर्भ में विभिन्न शैलियों एवं फोटोग्राफ के अनुभूतित पक्षों से संवाद प्रस्थपित करने की नाथद्वारा चित्रकला की भिन्नकाल की क्षमताओं में उनके कलात्मक व्यक्तित्वों का भी पूर्ण दखल रहा। उपभोग कर सकने की इस क्षमता की संभावनाओं में दो बाते प्रमुख रूप से रही— पहली, प्रचलित शैलियों में उपयोग की जिसमें सिद्धिजनों के पुष्टिमार्गीय दर्शन की जीवन्त कलात्मकता प्रदर्शित होती है। इस प्रवृत्ति को कला-मर्मज्ञ अर्नेस्ट किट्सजिंगर ने 'निश्चयमात्रिक-परिपाटी' कहा है। दूसरी को 'निश्चयमात्रिक विभेदन' कहा है जिसमें धीरे धीरे परिवर्तित होने वाली आकारद स्वरूप की स्वयं-भू शक्ति का उपयोग जो पुनर्जागरण के प्रयासों के अनुरूप इन चित्रकारों ने किया।

निष्कर्ष —

औचित्य के परिवेश में नाथद्वारा के चित्रकारों में अद्भुत रूप से तत्कालीन शैलियों का समन्वय कर अत्यन्त भाव प्रदान एवं हृदयग्राही जनरुचि की शैली का प्रादुर्भाव किया। उन्होंने अत्यन्त सावधानी से पुरातन-पश्चिमी शैली के चित्रात्मक गुणों को औचित्य रूप से अभिव्यजना के लिये उपयोग में लिया इसमें दो बाते प्रमुख रही— पहली प्रचलित शैलियों के उपयोग की जिसे अर्नेस्ट किट्सजिंगर ने निश्चय मात्रिक परिपाटी कहा और दूसरी को धीरे धीरे परिवर्तित होने वाली आकारद स्वरूप की जिसे निश्चय मात्रिक विभेदन कहा है।

संदर्भ:

1. कविराज श्यामलदास, वीर विनोद (द्वि.भाग) खण्ड-1 पुर्नमुद्रण (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 1986, पृष्ठ 237.
2. Ernest Kitsziner, Byzantine Art in the making main Lines of stylistic development in Art (3rd -7th Cen.), (London: Faber & Faber Ltd., 1977, 123.